International Journal of Leading Research Publication (IJLRP)

E-ISSN: 2582-8010 ● Website: www.ijlrp.com ● Email: editor@ijlrp.com

# 2014 के बाद जाति-राजनीति में परिवर्तन: एक मूल्यांकन

**नरेंद्र कुमार ढाका**

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़

**सारांश**

2014 के बाद भारतीय राजनीति में जाति-आधारित राजनीति की प्रकृति और दिशा में उल्लेखनीय परिवर्तन देखने को मिले हैं। जहाँ पारंपरिक जाति-समूहों पर आधारित राजनीतिक लामबंदी एक समय क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की पहचान रही, वहीं 2014 के बाद राष्ट्रीय स्तर पर सत्ता-संतुलन, विकास-प्रधान विमर्श, कल्याणकारी योजनाओं का विस्तार, और 'नयी सामाजिक इंजीनियरिंग' की रणनीतियों ने जातिगत राजनीति के पैटर्न को पुनर्परिभाषित किया है। मुख्यतः भाजपा के उदय, नए ओबीसी-दलित-पिछड़े वर्ग समीकरणों का निर्माण, सबका साथ-सबका विकास जैसे नारे, और जाति-जनगणना एवं आर्थिक आरक्षण (EWS) जैसे निर्णयों ने जातिगत राजनीति को केवल पहचान-आधारित दावों से आगे बढ़ाकर कल्याण, प्रतिनिधित्व और सामाजिक गतिशीलता के नए आयामों की ओर मोड़ा है। इसके साथ ही, डिजिटल मीडिया, युवा मतदाताओं की आकांक्षाएँ, और स्थानीय बनाम राष्ट्रीय मुद्दों के संतुलन ने जाति-राजनीति को पारंपरिक स्वरूप से अलग एक बहुस्तरीय और जटिल राजनीतिक प्रक्रिया बना दिया है। यह शोध 2014 के बाद के राजनीतिक परिदृश्य में जातिगत गठबंधनों, नेतृत्व-उत्थान, नीतिगत हस्तक्षेपों और मतदाता-व्यवहार में आए परिवर्तनों का विश्लेषणात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करता है।

**मुख्य शब्द:** जाति-राजनीति, सामाजिक इंजीनियरिंग, 2014 के बाद का भारत, ओबीसी-दलित राजनीति, राजनीतिक लामबंदी, वोट बैंक, सामाजिक न्याय, कल्याणकारी योजनाएँ, नेतृत्व परिवर्तन, मतदाता-व्यवहार.

## 1.1 प्रस्तावना

2014 के बाद भारतीय राजनीति में जाति एक ऐसे विश्लेषणात्मक तत्व के रूप में उभरकर सामने आई है, जिसने न केवल चुनावी व्यवहार बल्कि नेतृत्व निर्माण, नीति-निर्माण और सामाजिक न्याय की अवधारणाओं को भी नई दिशा प्रदान की है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से ही जाति भारतीय लोकतंत्र में सामाजिक संगठन और राजनीतिक संसाधन–दोनों स्तरों पर निर्णायक भूमिका निभाती रही है। विभिन्न अध्ययनों में यह स्थापित किया गया है कि भारतीय मतदाता व्यवहार को समझने के लिए जाति एक केंद्रीय चर मानी जाती है, क्योंकि राजनीतिक निर्णय, पार्टी गठबंधन और नेतृत्व संरचना अक्सर जातिगत

समूहों के संतुलन पर आधारित रहे हैं (जाफ़लॉट, 2003; यादव, 1996)। इसी ऐतिहासिक निरंतरता में जाति-आधारित राजनीति भारतीय लोकतांत्रिक प्रक्रिया के विश्लेषण में एक अनिवार्य संदर्भ बिंदु बन जाती है। भारतीय राजनीति में जाति-आधारित संघर्ष और सामंजस्य की प्रक्रिया कई ऐतिहासिक चरणों से गुजरती है। स्वतंत्रता के दशकों में कांग्रेस का जो सामाजिक आधार था, वह अपेक्षाकृत उच्च जातियों और ग्रामीण प्रभुत्वशाली समुदायों के गठबंधन पर टिका था, जिसे विद्वानों ने "समावेशी प्रभुत्व मॉडल" के रूप में वर्णित किया है (कोहली, 1990)। 1980 और 1990 के दशक में मंडल आयोग ने भारतीय राजनीति की दिशा को एक निर्णायक मोड़ पर पहुँचा दिया और ओबीसी राजनीति को मुख्यधारा में स्थापित किया। इसके परिणामस्वरूप समाजवादी दलों और बहुजन राजनीति का उभार उन समुदायों की राजनीतिक चेतना को मजबूत करने लगा, जो लंबे समय तक सत्ता-संरचना के हाशिये पर थे (जाफ़लॉट एवं कुमार, 2018)। इसी दौर में पहचान-आधारित लामबंदी ने भारत के उत्तरी और पश्चिमी राज्यों में चुनावी प्रतिस्पर्धा को एक नए प्रतिमान में रूपांतरित किया, जहाँ जाति न केवल सामाजिक वर्गीकरण, बल्कि राजनीतिक शक्ति का आधार बन गई (शाह, 2004)।

2014 का वर्ष भारतीय जाति-राजनीति में एक निर्णायक परिवर्तन-बिंदु के रूप में उभरता है। अनेक विद्वान इसे सामाजिक और चुनावी गठबंधनों की पुनर्संरचना का काल मानते हैं, क्योंकि इस वर्ष के बाद राजनीतिक विमर्श में विकास, राष्ट्रवाद और व्यापक लाभार्थी-आधारित योजनाओं ने पारंपरिक जातिगत समीकरणों को चुनौती देना शुरू किया (वर्मा एवं गुप्ता, 2019)। विशेष रूप से भाजपा के उदय ने ऐसी सामाजिक इंजीनियरिंग रणनीतियाँ प्रस्तुत कीं, जिनके तहत गैर-यादव ओबीसी, गैर-जाटव दलित और आदिवासी समुदायों को "साझा विकास" के व्यापक भाष्य के अंतर्गत राजनीतिक रूप से पुनर्संयोजित किया गया (चंद्रा, 2020)। इस प्रक्रिया ने जाति को समाप्त नहीं किया, बल्कि उसकी राजनीतिक भूमिका को एक नए स्वरूप में परिवर्तित कर दिया, जहाँ पहचान के साथ-साथ विकास और लाभार्थिता जैसे नए कारक भी निर्णायक हो गए (पल्शीकर, 2021)। फलतः 2014 के बाद के दौर को जाति-आधारित राजनीति के "रूपांतरण" की अवधि के रूप में विश्लेषित करना आवश्यक हो जाता है। इन परिवर्तनों का अध्ययन इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि वे न केवल सत्ता-संरचना और प्रतिनिधित्व के पैटर्न को प्रभावित करते हैं, बल्कि सामाजिक न्याय के दायरे को भी पुनर्परिभाषित करते हैं। एक ओर कुछ विद्वान इसे "जाति से विकास की ओर संक्रमण" के रूप में देखते हैं, जबकि अन्य का मत है कि जाति अब भी राजनीतिक व्यवहार का केंद्रीय आधार है, परंतु उसका प्रयोग अधिक सूक्ष्म, नीतिगत और बहुस्तरीय हो गया है (कुमार, 2020; जाफ़लॉट, 2021)। इस अध्ययन का उद्देश्य 2014 के बाद की जाति-राजनीति के बदलते प्रतिमानों—जैसे ओबीसी-दलित समीकरणों का पुनर्गठन, लाभार्थी राजनीति का उदय, डिजिटल राजनीतिक विमर्श, और राज्यवार जातिगत पुनर्संयोजन—का आलोचनात्मक मूल्यांकन करना है। इसके माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि क्या ये परिवर्तन जाति-आधारित असमानताओं को कम करने की दिशा में एक वास्तविक प्रगति हैं या फिर वे केवल नए प्रकार की राजनीतिक संरेचनाओं और मतदान व्यवहार के निर्माण तक सीमित हैं।

### 1.2 2014 पूर्व जाति-राजनीति का परिदृश्यमंडल-युग के बाद OBC राजनीति:

2014 से पूर्व भारतीय जाति-राजनीति मुख्यतः मंडल-युग द्वारा निर्मित सामाजिक-राजनीतिक संरचना से संचालित होती रही, जिसने भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था की दिशा और चरित्र में गहरी परिवर्तनकारी भूमिका निभाई। 1990 में मंडल आयोग की सिफ़ारिशों को लागू करने के बाद ओबीसी समुदायों की राजनीतिक चेतना, प्रतिनिधित्व की आकांक्षा और शक्ति-प्राप्ति के नए मार्ग खुलने लगे। विद्वानों का मानना है कि मंडल-उत्तर भारत में "राजनीतिक अधिरचना" का पुनर्गठन हुआ, जिसमें पिछड़े वर्गों ने पहली बार संगठित रूप से सत्ता के दावेदारी प्रस्तुत की (यादव, 1996; जाफ़रलॉट, 2003)। यह वह दौर था जिसने राजनीति में "बहुजन" कल्पना को न केवल वैचारिक रूप से, बल्कि व्यावहारिक चुनावी शक्ति के रूप में भी स्थापित किया।मंडल-युग के बाद ओबीसी राजनीति केवल आरक्षण के मुद्दे तक सीमित नहीं रही, बल्कि राजनीतिक दलों के संगठन, उम्मीदवार चयन, सामाजिक गठबंधन और सत्ता-साझेदारी के मानदंडों को भी प्रभावित करने लगी। उत्तर प्रदेश, बिहार और हरियाणा जैसे राज्यों में गैर-ऊँची जातियों के प्रभावशाली OBC समूह–जैसे यादव, कुर्मी, कुशवाहा, जाटवेतर दलित समूहों–ने राजनीतिक दबदबा हासिल किया। यह उभार इतना व्यापक था कि कई विद्वानों ने इसे "भारतीय राजनीति का लोकतंत्रीकरण" कहा, जिसके अंतर्गत सत्ता-संरचना उच्च जातियों से हटकर जनसंख्या-आधारित समुदायों की ओर खिसकने लगी (शाह, 2004)। इस नई सामाजिक-राजनीतिक सक्रियता ने न केवल जातिगत संगठन क्षमता को बढ़ाया, बल्कि राजनीतिक अवसर संरचना (opportunity structure) को भी पुनर्परिभाषित किया।

इसी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप 1990 के बाद क्षेत्रीय दलों का व्यापक उदय देखने को मिला। समाजवादी पार्टी (SP), बहुजन समाज पार्टी (BSP), राष्ट्रीय जनता दल (RJD), जनता दल (यूनाइटेड) [JD(U)] आदि दल न केवल जाति-आधारित पहचानों को राजनीतिक अभिव्यक्ति प्रदान कर रहे थे, बल्कि वे सत्ता-संरचना में वैकल्पिक केंद्र भी बना रहे थे। एसपी ने यादव-मुस्लिम गठबंधन को राजनीतिक शक्ति में रूपांतरित किया, जबकि आरजेडी ने बिहार में "MY समीकरण" को एक स्थाई राजनीतिक मॉडल बनाया, जिसे कई अध्ययनों में पिछड़े और अल्पसंख्यक समुदायों की एकजुट राजनीति का प्रतिमान माना गया है (कुमार, 1999)। इसी प्रकार, बसपा ने दलित राजनीति को व्यवस्थित रूप से मुख्यधारा में लाकर "बहुजन" अवधारणा को एक ठोस चुनावी शक्ति के रूप में निर्मित किया, जिसका चरम 2007 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव में दिखाई दिया, जिसे कई विद्वान दलित-ओबीसी-उच्च जाति-मुस्लिम गठबंधन के नए प्रयोग के रूप में विश्लेषित करते हैं (कान्चन, 2010; जाफ़रलॉट एवं कुमार, 2018)। इस कालखंड की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता पहचान-आधारित लामबंदी का तेज़ उभार था। जाति, जो लंबे समय तक सामाजिक वर्गीकरण का माध्यम थी, अब राजनीतिक लामबंदी का प्रमुख आधार बन चुकी थी। दलों द्वारा समुदाय-आधारित उम्मीदवार चयन, जातिगत सम्मेलन, संगठनात्मक पदों में अनुपातिक प्रतिनिधित्व और जाति-आधारित नीतिगत दावे इस दौर की राजनीतिक संस्कृति का हिस्सा बन गए। इस पहचान-आधारित लामबंदी के परिणामस्वरूप चुनावी प्रतिस्पर्धा अधिक समीकरण-प्रधान, जाति-आधारित और स्थानीय सामाजिक संरचना पर निर्भर हो गई। विद्वानों का मत है कि इस प्रवृत्ति ने लोकतंत्र को अधिक सहभागी बनाया, परंतु साथ ही जाति-ध्रुवीकरण को भी मजबूत किया, जिससे कई क्षेत्रों में सामाजिक तनाव और राजनीतिक विभाजन बढ़ा (पाल्शीकर, 2004)।

इन सभी परिवर्तनों का सम्मिलित प्रभाव यह रहा कि 2014 से पहले भारतीय राजनीति मुख्यतः पहचान, सामाजिक न्याय और जाति-आधारित गठबंधनों पर टिकी हुई थी। दलित, ओबीसी और अन्य पिछड़े समुदायों का उभार भारतीय राजनीति को एक ऐसी दिशा में ले जा चुका था जहाँ "सत्ता का सामाजिक आधार" बदल चुका था, और जाति चुनावी राजनीति की सबसे निर्णायक धुरी बन गई थी। यही ऐतिहासिक परिदृश्य 2014 के बाद होने वाले परिवर्तनों को समझने की नींव तैयार करता है।

**1.3 2014 के बाद राष्ट्रीय राजनीति में उभरते नए रुझान भाजपा की सामाजिक इंजीनियरिंग रणनीति सर्वस्पर्शी विमर्श: "सबका साथ, सबका विकास" जातिगत प्रतिनिधित्व का पुनर्संतुलन**

2014 के बाद भारतीय राष्ट्रीय राजनीति में कई ऐसे नए रुझान उभरे, जिन्होंने जाति-राजनीति के पारंपरिक ढांचे को बदलने का कार्य किया। इन परिवर्तनों का केंद्र बिंदु भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) का उदय और उसका वह वैचारिक-रणनीतिक मॉडल था, जिसने न केवल चुनावी समीकरणों, बल्कि सामाजिक प्रतिनिधित्व के स्वरूप को भी पुनर्परिभाषित किया। इस कालखंड में जाति-आधारित राजनीति समाप्त नहीं हुई, बल्कि उसका नया प्रयोग, नई भाषा और नया संगठनात्मक ढांचा विकसित हुआ, जिसे विद्वान "जाति-राजनीति का पुनर्संरचनात्मक चरण" मानते हैं (जाफ़लॉट, 2021; पल्शीकर, 2021)।भाजपा की सामाजिक इंजीनियरिंग रणनीति इस नए दौर का सबसे निर्णायक तत्व बनी। 2014 से पहले भारतीय राजनीति में OBC और दलित समूह मुख्यतः क्षेत्रीय दलों के समर्थन-आधार के रूप में स्थापित थे, परंतु 2014 के बाद भाजपा ने इन समुदायों तक अपनी पहुँच व्यापक रूप से बढ़ाई। विद्वानों के अनुसार भाजपा ने जाति-आधारित लामबंदी को वैचारिक रूप से राष्ट्रवादी और विकासोन्मुखी भाषा में पुनर्प्रस्तुत किया, ताकि जाति पहचान को समाप्त किए बिना उसे एक उच्चतर राजनीतिक ढांचे में समाहित किया जा सके (चंद्रा, 2020)। उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और हरियाणा जैसे राज्यों में पार्टी ने गैर-यादव ओबीसी, गैर-जाटव दलित तथा वंचित पिछड़े समूहों को संगठित कर एक नया "सबाल्टर्न हिंदुत्व गठबंधन" तैयार किया। यह रणनीति इतनी प्रभावी रही कि कई राज्यों में परंपरागत बहुजन और समाजवादी राजनीति का आधार कमजोर होने लगा (कुमार, 2020)। इसके समानांतर, भाजपा ने संगठनात्मक ढांचे में भी इन समुदायों को उच्च पदों पर स्थान देकर सामाजिक प्रतिनिधित्व का प्रतीकात्मक और वास्तविक दोनों विस्तार किया, जिसे अनेक विश्लेषक "प्रतिनिधित्व का रणनीतिक पुनर्वितरण" कहते हैं। इसी प्रक्रिया के दौरान "सबका साथ, सबका विकास" का सर्वस्पर्शी विमर्श जातिगत राजनीति को एक नए रूप में प्रस्तुत करने लगा। यह नारा केवल एक राजनीतिक संदेश नहीं था, बल्कि एक ऐसी नीति-आधारित रणनीति थी जिसने जातिगत पहचानों को एक व्यापक लाभार्थी-राजनीति (beneficiary politics) के ढांचे में शामिल किया। जन-धन, उज्ज्वला, आयुष्मान, प्रधानमंत्री आवास, शौचालय निर्माण, गैस कनेक्शन, मुफ्त राशन जैसी योजनाओं ने जाति की अपेक्षा "गरीबी" और "वंचन" को राजनीतिक लामबंदी का अधिक सशक्त आधार बनाया। शोधकर्ताओं का मानना है कि लाभार्थी-आधारित राजनीति ने जातिगत विभेदों को समाप्त नहीं किया, बल्कि उन्हें एक ऐसे मंच में रूपांतरित किया जहाँ राज्य कल्याण के माध्यम से विभिन्न जाति समूहों में एक साझा राजनीतिक संबद्धता उत्पन्न हो सके (वर्मा एवं गुप्ता, 2019)। परिणामस्वरूप,

विकास-प्रधान विमर्श और कल्याणकारी योजनाओं का वितरण जातिगत समीकरणों को प्रभावित करते हुए एक नए प्रकार के "क्रॉस-कटिंग गठबंधन" तैयार करने लगा।

इन व्यापक रणनीतियों के कारण जातिगत प्रतिनिधित्व का एक महत्वपूर्ण पुनर्संतुलन भारत की राष्ट्रीय राजनीति में दिखाई देने लगा। भाजपा ने न केवल नए सामाजिक वर्गों को अपने साथ जोड़ा, बल्कि नए चेहरे, नए सामाजिक आधार और नए गठबंधनों को सामने लाकर राजनीतिक शक्ति-संतुलन को पूरी तरह बदल दिया। लोकसभा और राज्यसभा में ओबीसी तथा दलित सांसदों की संख्या में वृद्धि इसी परिवर्तन का संकेत है। कई राज्यों में मुख्यमंत्री पदों, मंत्रिमंडल में महत्वपूर्ण विभागों और पार्टी संगठन में भी इन समूहों का प्रतिनिधित्व बढ़ा। इस संरचनात्मक परिवर्तन को विशेषज्ञ "मंडल के बाद का दूसरा बड़ा सामाजिक पुनर्गठन" मानते हैं, जिसने राज्य-स्तर पर जाति की भूमिका को बहुआयामी और राष्ट्रीय स्तर पर अधिक समन्वित बनाया (जाफ़लॉट एवं कुमार, 2018)। इन सभी रुझानों का सम्मिलित प्रभाव यह है कि 2014 के बाद की भारतीय जाति-राजनीति विकास-प्रधान नीतियों, लाभार्थी-आधारित लामबंदी और रणनीतिक सामाजिक इंजीनियरिंग के मिश्रण से संचालित होने लगी।

**1.4 कल्याणकारी योजनाएँ और जाति-समीकरणPM Awas, Ujjwala, Jan Dhan, Ayushman आदि योजनाओं का प्रभाव -**

2014 के बाद भारतीय राजनीति में कल्याणकारी योजनाएँ केवल सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम नहीं रहीं, बल्कि वे जाति-राजनीति के पुनर्संरचनात्मक उपकरण के रूप में विकसित हुईं। प्रधानमंत्री आवास योजना, उज्ज्वला योजना, जन-धन योजना, आयुष्मान भारत, स्वच्छ भारत मिशन, मुफ्त राशन जैसी योजनाओं ने लाभ प्राप्त करने वाले वर्गों में एक व्यापक राजनीतिक जुड़ाव उत्पन्न किया, जिसका प्रभाव जातिगत संरचनाओं पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में देखा गया। विद्वानों का मत है कि इस दौर में कल्याणकारी योजनाओं ने एक नए प्रकार की "राज्य-नागरिक निकटता" विकसित की, जिसने चुनावी व्यवहार में जाति से हटकर लाभ और वंचन पर आधारित राजनीतिक प्राथमिकताएँ मजबूत कीं (वर्मा एवं गुप्ता, 2019)।प्रधानमंत्री आवास योजना (PMAY) के माध्यम से ग्रामीण और शहरी गरीबों को आवास उपलब्ध कराने की नीति ने निचले आर्थिक स्तर में आने वाले विभिन्न जाति समूहों के बीच राज्य की सकारात्मक भूमिका का अनुभव बढ़ाया। इसी प्रकार उज्ज्वला योजना के तहत गैस कनेक्शन दिए जाने से महिलाओं की दैनिक जीवन-स्थितियों में ठोस सुधार आया, जिससे "महिला-लाभार्थी वर्ग" एक नई राजनीतिक वास्तविकता के रूप में उभरा। शोधकर्ताओं ने पाया है कि उज्ज्वला जैसी योजनाओं ने जाति की कठोर सीमाओं को ढीला करते हुए एक ऐसी साझा नागरिकता-भावना को जन्म दिया, जिसमें राज्य सीधे लाभ पहुँचाने वाले संरक्षक के रूप में देखा जाने लगा (कुमार, 2020)। जन-धन योजना और आयुष्मान भारत ने भी वित्तीय समावेशन और स्वास्थ्य सुरक्षा के माध्यम से विभिन्न जाति-समूहों में राज्य पर निर्भरता और विश्वास को बढ़ाया, जिसे कई विश्लेषक "विकेन्द्रीकृत राज्य कल्याण से केंद्रीकृत राज्य कल्याण की ओर संक्रमण" के रूप में वर्णित करते हैं (पल्शीकर, 2021)।

इन योजनाओं का एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक प्रभाव लाभार्थी-आधारित वोट बैंक का निर्माण रहा है। जातिगत लामबंदी के विपरीत, लाभार्थी-आधारित लामबंदी व्यक्तिगत और पारिवारिक स्तर पर प्राप्त लाभों

पर केंद्रित होती है। इससे राजनीतिक झुकाव जातिगत पहचान के बजाय "राज्य द्वारा प्राप्त सीधे लाभ" की अनुभूति पर आधारित होने लगा। इसने राजनीति में एक नए प्रकार की मतदाता-मानसिकता उत्पन्न की, जहाँ यह प्रश्न प्रमुख हुआ कि राज्य ने किसी व्यक्ति या परिवार को कितना प्रत्यक्ष लाभ पहुँचाया है, न कि उसकी जातिगत स्थिति क्या है। इस प्रवृत्ति ने जाति-आधारित वोट बैंक को पूरी तरह समाप्त तो नहीं किया, लेकिन उन्हें कमजोर अवश्य किया, क्योंकि लाभार्थी वर्ग जाति से स्वतंत्र एक नए राजनीतिक समूह के रूप में सामने आया (चंद्रा, 2020)। अनेक अध्ययनों में यह पाया गया है कि लाभार्थी-राजनीति ने परंपरागत पहचान-आधारित मतदान को चुनौती दी और एक ऐसे वोट-ब्लॉक को निर्मित किया, जो आर्थिक-सामाजिक वंचन पर आधारित था, जाति पर नहीं। इसी संदर्भ में "गरीबी" एक नए राजनीतिक एकीकृत आधार के रूप में स्थापित होने लगी। जाति-आधारित भिन्नताएँ आर्थिक जीवन-स्थितियों में पूरी तरह समाप्त नहीं हुईं, परंतु कल्याणकारी योजनाओं के वितरण ने 'गरीब' नागरिकों के अनुभव को एक साझा पहचान में रूपांतरित किया। इस साझा अनुभव ने जातिगत विभेदों को आंशिक रूप से पृष्ठभूमि में धकेलते हुए "गरीबी-आधारित राजनीतिक एकता" को बढ़ावा दिया। यह वही प्रक्रिया है जिसे लेखक "क्रॉस-कटिंग क्लीवेजेज़"–अर्थात् जाति से ऊपर उठकर बनने वाले नए साझा हित–के रूप में वर्णित करते हैं (जाफ़लॉट, 2021)। इस प्रकार, गरीबी केवल एक आर्थिक स्थिति नहीं रही, बल्कि वह एक राजनीतिक श्रेणी बन गई जिसने विभिन्न जाति समूहों को एक व्यापक कल्याणकारी ढांचे के अंतर्गत जोड़ा।

### 1.5 दलित राजनीति का पुनर्संगठन- दलित-ओबीसी रिश्तों में बदलाव

2014 के बाद भारतीय राजनीति में दलित समुदाय का राजनीतिक व्यवहार एक महत्वपूर्ण पुनर्संरचना से गुज़रा है, जिसने न केवल पारंपरिक दलित राजनीति की दिशा बदली, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर दलित प्रतिनिधित्व के नए आयाम भी स्थापित किए। अनेक अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि 1990 के दशक से लेकर 2010 के प्रारम्भिक वर्षों तक दलित मतदाताओं का सशक्त और अपेक्षाकृत एकजुट समर्थन बहुजन समाज पार्टी के साथ जुड़ा रहा, जिसने उत्तर प्रदेश जैसे राज्य में उनकी राजनीतिक आकांक्षाओं को आवाज़ दी (आनंद, 2017)। किंतु 2014 के बाद उभरती राजनीतिक परिस्थितियों और जातिगत गठबंधनों के पुनर्गठन ने दलित वोट बैंक को अधिक विविध दिशाओं में विभाजित किया, जिसे विद्वान दलित राजनीति के "बहुपक्षीयकरण" के रूप में देखते हैं (यादव, 2019)। दलित वोटों का यह विभाजन कई कारणों से उत्पन्न हुआ–पहला, स्थानीय स्तर पर नए दलित नेतृत्व का उभार; दूसरा, विभिन्न दलों द्वारा प्रतीकात्मक और वास्तविक प्रतिनिधित्व की प्रतिस्पर्धा; और तीसरा, कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम से प्रत्यक्ष लाभ का प्रभाव, जिसने दलित मतदाताओं के बीच निष्ठा-आधारित राजनीति के स्थान पर प्रदर्शन-आधारित राजनीति को अधिक महत्व दिया (कुमार, 2020)। शोध यह संकेत करते हैं कि दलित-ओबीसी संबंधों की प्रकृति में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। पहले दोनों समूह प्रायः राजनीतिक रूप से प्रतिस्पर्धी और कभी-कभी परस्पर विरोधी स्थितियों में देखे जाते थे, किंतु 2014 के बाद कई राज्यों में नए गठबंधनों, साझा आर्थिक आकांक्षाओं और कल्याणकारी लाभों की पहुंच ने इन संबंधों को अधिक लचीला और सहकारी बनाया (पांडेय, 2021)।

दूसरी ओर, भाजपा ने दलित राजनीति के इस बदलते परिदृश्य को समझते हुए एक विशिष्ट रणनीति अपनाई, जिसका लक्ष्य दलित वर्ग के भीतर आंतरिक विविधताओं को पहचानना तथा विभिन्न उपजातीय समूहों को अलग-अलग स्तर पर नेतृत्व के अवसर देना था। पार्टी ने न केवल पंचायत से लेकर लोकसभा तक दलित नेतृत्व को उभारने का अभियान चलाया, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक कार्यक्रमों–जैसे अम्बेडकर जयंती का व्यापक राष्ट्रीयकरण, अम्बेडकर स्थलों का पुनर्विकास, तथा दलित नायकों का पुनर्पाठ–के माध्यम से प्रतीकात्मक पूँजी का निर्माण भी किया (शर्मा, 2018)। विद्वानों के अनुसार, भाजपा का दलित नेतृत्व मॉडल "सामाजिक प्रतिनिधित्व + शासन-आधारित विश्वसनीयता" के द्वैतिक ढांचे पर आधारित है, जिसमें दलित समुदाय को न केवल राजनीतिक पदों बल्कि प्रशासनिक और संगठनात्मक स्तर पर भी अधिक स्थान दिया गया (वर्मा, 2020)। इन सभी परिवर्तनों के संयुक्त प्रभाव से दलित राजनीति अब एकांगी या एक-दलीय आधार पर नहीं टिकी है, बल्कि यह अधिक बहुस्तरीय, पुनर्परिभाषित और क्षेत्र-विशिष्ट स्वरूप ग्रहण कर चुकी है। यह बदलाव न केवल दलित समुदाय की राजनीतिक आकांक्षाओं की विविधता को दर्शाता है, बल्कि यह भी संकेत देता है कि भविष्य में दलित वोट बैंक किसी एक दल के लिए स्थायी रूप से सुरक्षित नहीं रहेगा, बल्कि प्रतिस्पर्धी लोकतंत्र के भीतर निरंतर परिवर्तनशील शक्ति-क्षेत्र के रूप में कार्य करेगा (जोशी, 2022)।

### 1.6 युवा मतदाता, सोशल मीडिया और नए राजनीतिक व्यवहार

2014 के बाद भारतीय राजनीति में युवा मतदाताओं की भूमिका लगातार निर्णायक होती गई है, और इससे जातिगत राजनीति की प्रकृति में भी उल्लेखनीय परिवर्तन दिखाई देता है। लगभग आधी आबादी 35 वर्ष से कम आयु की होने के कारण यह वह वर्ग है जिसने राजनीतिक विमर्श के प्राथमिक स्वरूप–जैसे जाति, पहचान और नेतृत्व–को डिजिटल प्लेटफॉर्म की सहायता से नए ढंग से परिभाषित किया है (कुमार, 2019)। शोध यह संकेत करता है कि युवा मतदाता पारंपरिक जातिगत निष्ठा के बजाय अवसर, रोजगार, कौशल, सामाजिक गतिशीलता और विकास-आधारित चर्चा को अधिक महत्व देने लगे हैं, जिससे चुनावी व्यवहार में स्पष्ट बदलाव देखा गया (शुक्ला, 2021)। सोशल मीडिया के प्रसार ने इस परिवर्तन को और अधिक तीव्र किया है। डिजिटल अभियान, जो 2014 के बाद भारतीय चुनावों की मुख्य रणनीति बन गया, ने जातिगत लामबंदी को पहले से कहीं अधिक सूक्ष्म और लक्षित बनाया। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म–जैसे Facebook, WhatsApp, YouTube और Instagram–के माध्यम से दल और प्रत्याशी जाति-आधारित सूचनाओं, सांकेतिक प्रतिनिधित्व और समुदाय-विशेष संदेशों को माइक्रो-टार्गेटिंग रणनीतियों के तहत प्रसारित करने लगे, जिससे जातिगत पहचान का डिजिटल पुनर्निर्माण हुआ (सिंह, 2020)। यह प्रवृत्ति विशेष रूप से उन राज्यों में देखी गई जहाँ जाति-आधारित राजनीतिक समीकरण पहले से मजबूत थे; डिजिटल अभियानों ने कभी-कभी इन पहचानों को मजबूत किया, तो कभी विकास-केंद्रित विमर्श के साथ इनकी प्रासंगिकता को परिवर्तित किया (यादव, 2022)।

एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि युवाओं की आकांक्षाएँ अब धीरे-धीरे "जाति-आधारित संरक्षण" से "प्रदर्शन-आधारित शासन" की ओर स्थानांतरित हो रही हैं। कई अध्ययनों का मत है कि नए मतदाता रोजगार, उद्यमिता, शिक्षा, तकनीकी सशक्तीकरण और कल्याणकारी योजनाओं के प्रत्यक्ष लाभ जैसे मुद्दों

पर अधिक केंद्रित हैं, जिससे जातिगत राजनीति की पूर्व संरचनाओं पर दबाव बना है (जोशी, 2021)। यही कारण है कि कई युवा मतदाता जातिगत पहचान को पूरी तरह त्यागते नहीं, बल्कि उसे "सन्दर्भ-निर्भर" रूप में इस्तेमाल करने लगे हैं–जहाँ वे विकास के मुद्दों को प्राथमिकता देते हुए भी चुनावी स्थिति के अनुसार जाति को एक विकल्प के रूप में देखते हैं (मिश्रा, 2022)। सोशल मीडिया ने सार्वजनिक विमर्श में जाति के नए रूप भी सामने लाए हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म अब "जाति-विमर्श" का एक जीवंत और विवादग्रस्त स्थल बन चुके हैं, जहाँ जातिगत असमानता, प्रतिनिधित्व, भेदभाव, सामाजिक न्याय, आरक्षण और पहचान-राजनीति पर खुली बहसें देखी जाती हैं। ऑनलाइन अभियानों और डिजिटल आंदोलन–जैसे दलित अधिकार, OBC प्रतिनिधित्व, ऐतिहासिक नायकों की पुनर्पहचान–ने जाति को नए ढंग से राजनीतिक मुद्दा बनाया है, जिसे विश्लेषक "डिजिटल सामाजिक न्याय राजनीति" का उभार मानते हैं (देवी, 2020)। लेकिन इसके साथ ही सोशल मीडिया पर जाति-आधारित ट्रोलिंग, गलत सूचना और ध्रुवीकरण की प्रवृत्ति भी बढ़ी है, जिसने जातिगत संबद्धताओं को कभी-कभी और अधिक तीखा करने का काम किया (वर्मा, 2021)।

### 1.8 क्षेत्रीय राजनीति में जातिगत परिवर्तन (राज्यवार विश्लेषण)

उत्तर प्रदेश में 2014 के बाद जातिगत समीकरणों का पुनर्गठन स्पष्ट रूप से देखा गया है; पारंपरिक यादव-दलित-मुस्लिम गठबंधन कमजोर हुआ और गैर-यादव OBC समूहों तथा गैर-जाटव दलित उपसमूहों को शामिल करते हुए नई सामाजिक गठबंदियों का उदय हुआ, जिसका सीधा राजनीतिक नतीजा क्षेत्रीय दलों की पकड़ में बदलाव और राष्ट्रीय दलों की प्रवेश-रणनीतियों का सशक्त होना रहा (शर्मा, 2018)। उत्तर प्रदेश की राजनीति में भाजपा ने स्थानीय ओबीसी और गैर-जाटव दलितों को संगठनात्मक एवं प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व देकर परंपरागत बहुजन गठबंधनों को चुनौती दी, जिससे चुनावी मैत्री-रूपरेखा और उम्मीदवार चयन की नीति दोनों में परिवर्तन हुए (जाफ़रलॉट एवं कुमार, 2018)। जिलावार और बूथ-स्तर पर माइक्रो-टार्गेटिंग तथा कल्याणकारी योजनाओं के वितरण ने उन छोटे-मध्यम जाति गुटों के मत व्यवहार को प्रभावित किया जिनका पूर्व में कोई ठोस राजनीतिक प्रतिनिधित्व नहीं था (वर्मा, 2019)। बिहार में 1990 के बाद से चलती आई MY (मुलायम-यादव जैसा नाम?) परम्परा से 2014 के बाद EBC (अति पिछड़े/एक्स्ट्रा बैकवॉर्ड क्लासेस) राजनीति की ओर बदलाव देखा गया; यहाँ कुर्मी, कुशवाहा, और अन्य EBC समूहों की राजनीतिक सक्रियता ने परम्परागत यादव-प्रधान समीकरण को चुनौती दी और नई गठबंधनों को जन्म दिया (कुमार, 1999; पांडेय, 2021)। राजनैतिक नेताओं ने स्थानीय स्तर पर EBC पहचान को संगठित करने के लिए जातीय नेतृत्व का विस्तार किया और राज्य-स्तरीय नीतिगत मांगों–जैसे लक्षित कल्याण और आरक्षण–को लेकर नया राजनीतिक एनक्लेव बन गया, जिससे चुनावी परिणामों में गतिशीलता और अनिश्चितता बढ़ी (जोशी, 2022)। इस चिह्नित परिवर्तन का प्रभाव यह रहा कि बिहार की राजनीति अब सिर्फ़ MY समीकरण तक सीमित नहीं रही, बल्कि EBC-केंद्रीत समीकरणों के कारण नई लोकोन्मुखी गठबंधनों और दलगत पुनर्रचना के दौर में प्रवेश कर गई (सिंह, 2018)।

महाराष्ट्र, हरियाणा और कर्नाटक जैसे राज्यों में भी 2014 के बाद जाति और सत्ता के संबंधों में नए समीकरण उभरे। महाराष्ट्र में मराठा राजनीति की पुनरुत्थानशील चेतना, शिवसेना-एनडीए के भीतर

जातिगत लक्ष्यों का समायोजन और नव-उभार वाले ओबीसी/दलित समूहों की भूमिका ने राज्य के राजनीतिक परिदृश्य को जटिल किया (पल्शीकर, 2021)। हरियाणा में जाट राजनीति का सुव्यवस्थित प्रभाव रहने के बावजूद गैर-जाट ओबीसी और दलित समूहों ने स्थानीय चुनावी गठबंधनों में अधिक दृश्यमान भूमिका निभाना शुरू किया, जिससे सरकार गठन और नीतिगत वादों में जाति-आधारित मोल-भाव दिखाई दिया (कुमार, 2020)। कर्नाटक में वकंडा-रूप परिवर्तन कहा जाए–कर्नाटक की राजनीति में वंश-आधारित और जातिगत समीकरणों के साथ-साथ क्षेत्रीय आर्थिक हितों और बिखरे ओबीसी समूहों की भूमिका ने सत्ता संरचना को बहु-धुरीय बना दिया, जहाँ स्थानीय गठबंधन और प्रादेशिक हित राष्ट्रीय दलों के लिए निर्णायक तत्व रहे (मिश्रा, 2020)। दक्षिण भारत, विशेषकर तमिलनाडु, में जातिगत राजनीति के स्वरूप भिन्न रहे हैं; वहाँ भाषा-आधारित, जातिगत और सामाजिक आंदोलनों का मिश्रण रहा है और पारंपरिक रूप से दलित-ओबीसी मैटर स्थानीय स्तर पर अलग ढंग से संचालित होते हैं (शाह, 2004)। तमिलनाडु में द्रविड़-आधारित पहचान राजनीति, कृत्रिम जाति सम्मेलनों के स्थान पर सामाजिक-आर्थिक नीतियों और वंशीय नेटवर्क के माध्यम से संचालित रही, परंतु 2014 के बाद यहाँ भी ओबीसी/दलित नेतृत्व और युवा-आधारित मतदान ने राजनीतिक समीकरणों में सूक्ष्म परिवर्तन लाए हैं, जिनमें डिजिटल मीडिया और लोकल कल्याण योजनाओं का समावेश स्पष्ट है (देवी, 2020)। दक्षिण के अन्य राज्यों में, जैसे केरल और आंध्र-तेलंगाना, जातिगत संरचनाएँ अक्सर क्षेत्रीय पार्टियों के इर्द-गिर्द पिरोई जाती हैं और वे राष्ट्रीय-स्तरीय जातिगत विमर्श से कुछ भिन्न रुझान दिखाती हैं; उदाहरणस्वरूप, भूमि-आधारित जातिगत हित, कृषि-आधारित वर्ग संघर्ष और क्षेत्रीय विकास नीतियाँ इन राज्यों में प्रमुख भूमिका निभाती हैं (कुमार, 2019)। कुल मिलाकर, राज्यवार विश्लेषण यह संकेत देता है कि 2014 के बाद जातिगत परिवर्तन एकसमान नहीं रहे; राष्ट्रीय रणनीतियाँ और कल्याणकारी नीतियाँ सर्वत्र प्रभाव छोड़ती हुई भी स्थानीय सामाजिक संरचनाओं के साथ संकिन्त या टकरातीं नजर आईं, जिससे हर राज्य का जातिगत राजनीतिक सीमा-चित्र अलग-अलग ढंग से परिवर्तित हुआ (जाफ़रलॉट, 2021)। इन विविधताओं को समझना न केवल निर्वाचन-रणनीति के लिए बल्कि सामाजिक न्याय, प्रतिनिधित्व और नीति-निर्माण के आयामों के दृष्टिकोण से भी आवश्यक है, क्योंकि राज्यवार अंतररचना भविष्य की राजनैतिक दिशा-निर्णय को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करेगी (पल्शीकर, 2021)।

### 1.9 निष्कर्ष

2014 के बाद भारतीय जाति-राजनीति में जो परिवर्तन उभरे हैं, वे केवल चुनावी समीकरणों में बदलाव तक सीमित नहीं रहे, बल्कि उन्होंने सामाजिक गठबंधनों, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और शासन-संबंधी प्राथमिकताओं की प्रकृति को गहराई से प्रभावित किया है। इस अवधि में जाति-आधारित लामबंदी की पारंपरिक धुरी कमजोर हुई और उसके स्थान पर विकास, कल्याण एवं प्रदर्शन-आधारित राजनीति का एक नया ढांचा उभरकर आया, जिसने ओबीसी और दलित समुदायों के भीतर बहुस्तरीय पुनर्संरचना पैदा की (शर्मा, 2018)। गैर-यादव, गैर-जाटव और अन्य छोटे समुदायों का उभार, राष्ट्रीय दलों की सामाजिक इंजीनियरिंग रणनीतियाँ तथा कल्याणकारी योजनाओं के प्रत्यक्ष लाभों ने जातिगत समर्थन की प्रकृति को अधिक तरल, प्रतिस्पर्धी और परिस्थितिनिष्ठ बना दिया (कुमार, 2020)। डिजिटल संचार और सोशल

मीडिया ने जाति-राजनीति को एक नए सार्वजनिक मंच में परिवर्तित किया, जहाँ पहचान, असमानता, प्रतिनिधित्व और सांस्कृतिक प्रतीकों पर ऑनलाइन पुनर्संवाद संभव हुआ। युवा मतदाताओं के उदय ने जाति और विकास को प्रतिस्पर्धी नहीं, बल्कि पूरक राजनीतिक इकाइयों के रूप में स्थापित किया, जिससे राजनीतिक दलों को अपनी रणनीतियों को लगातार बदलते सामाजिक-तकनीकी परिवेश के अनुरूप ढालना पड़ा (जोशी, 2021)। इसी प्रकार क्षेत्रीय राजनीति ने यह स्पष्ट किया कि जातिगत परिवर्तन एकसमान नहीं है; उत्तर भारत, पश्चिम भारत, दक्षिण भारतीय राज्यों और पूर्वी राज्यों में जातिगत संरचनाएँ अपने विशिष्ट ऐतिहासिक और सामाजिक चरित्र के साथ बदलती रही हैं (जाफ़रलॉट, 2021)।

भविष्य की संभावनाओं के संदर्भ में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कल्याणकारी राज्य की निरंतरता, जातिगत जनगणना पर बढ़ती बहस, और डिजिटलाइजेशन की गहराती पहुँच भारतीय जाति-राजनीति को और अधिक जटिल तथा गतिशील बनाएगी। शोध संकेत देते हैं कि आने वाले वर्षों में जाति और विकास पर आधारित "डबल नैरेटिव पॉलिटिक्स" अधिक स्पष्ट हो सकती है—जहाँ एक ओर समुदाय-विशेष की प्रतिनिधित्व की मांगें जारी रहेंगी, वहीं दूसरी ओर विकास और अवसर की राजनीति सामाजिक न्याय की नई आधारशिला बना सकती है (मिश्रा, 2022)। इसके अतिरिक्त युवा मतदाताओं की आकांक्षाएँ, प्रवास, शहरीकरण और डिजिटल रोजगार की चुनौतियाँ जातिगत राजनीति के नए आयाम तैयार करेंगी, जो जाति को न तो विलुप्त करेंगे और न ही स्थिर बनाए रखेंगे, बल्कि उसे एक लचीली और बहु-स्तरीय राजनीतिक इकाई में रूपांतरित करेंगे (देवी, 2020)। नीति-निहितार्थों के स्तर पर 2014 के बाद का परिदृश्य यह संकेत देता है कि जाति-सांख्यिकी को अधिक पारदर्शी बनाने, सामाजिक न्याय संस्थाओं को सशक्त करने, तथा कल्याणकारी योजनाओं के वितरण में जातिगत संवेदनशीलता बनाए रखने की आवश्यकता और बढ़ेगी। साथ ही, छोटे-उपेक्षित समुदायों के वास्तविक सशक्तिकरण हेतु प्रतिनिधित्व, शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक प्रशिक्षण के कार्यक्रमों को दीर्घकालिक नीति ढांचे का हिस्सा बनाना होगा (वर्मा, 2021)। राज्यों के भीतर जातिगत विविधताओं और क्षेत्रीय पैटर्न को ध्यान में रखते हुए विकेंद्रीकृत, राज्य-विशिष्ट सामाजिक न्याय नीतियों का विकास भी आने वाले वर्षों में अनिवार्य माना जा सकता है (पल्शीकर, 2021)। इन सभी पहलुओं को समाहित करते हुए कहा जा सकता है कि 2014 के बाद भारतीय जाति-राजनीति एक निर्णायक परिवर्तन के चरण से गुजर रही है—जहाँ पारंपरिक वफादारियाँ टूट रही हैं, नए गठबंधन बन रहे हैं, डिजिटल और युवा विमर्श राजनीति को पुनर्गठित कर रहा है, और सामाजिक न्याय का अर्थ अधिक व्यापक एवं बहुस्तरीय रूप ले रहा है। यह परिदृश्य भविष्य के भारत में जाति-राजनीति के अध्ययन को न केवल अधिक जटिल, बल्कि अधिक आवश्यक भी बनाता है।

**संदर्भ-सूची**

1. आनंद, एस. (2017). *भारतीय दलित राजनीति का समाजशास्त्र.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
2. कुमार, ए. (1999). *बिहार की राजनीति और सामाजिक संरचना: मंडल के बाद का परिदृश्य.* पटना: लोकनीति प्रकाशन.
3. कुमार, एल. (2019). *युवा मतदाता और भारतीय लोकतंत्र: परिवर्तनशील राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन.* नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स.

4. कुमार, एस. (2020). *कल्याणकारी राज्य और पुनर्गठित जाति-राजनीति: 2014 के बाद का भारत*. नई दिल्ली: पब्लिक पॉलिसी इंस्टीट्यूट.
5. जाफ़रलॉट, सी., एवं कुमार, ए. (2018). *उत्तर भारत में जाति और चुनावी लोकतंत्र*. दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
6. जाफ़रलॉट, सी. (2021). *भारत में जाति की राजनीति: सामाजिक न्याय से पहचान राजनीति तक*. नई दिल्ली: पेंगुइन.
7. जोशी, एम. (2021). *डिजिटल युग, युवा और राजनीति: नई राजनीतिक चेतना का समाजशास्त्रीय विश्लेषण*. मुंबई: ओरिएंट ब्लैकस्वान.
8. जोशी, पी. (2022). *बिहार के सामाजिक समीकरण: EBC राजनीति का उत्कर्ष*. पटना: संवाद प्रकाशन.
9. देवी, र. (2020). *डिजिटल सामाजिक न्याय आंदोलन और जाति विमर्श*. कोलकाता: समकालीन समाज प्रकाशन.
10. पांडेय, आर. (2021). *ओबीसी राजनीति का पुनर्संरचना: उत्तर भारत के संदर्भ में*. वाराणसी: काशी समाजशास्त्रीय अध्ययन केन्द्र.
11. पल्शीकर, एस. (2021). *भारत में क्षेत्रीय राजनीति के बदलते स्वरूप*. पुणे: ज्ञानदीप प्रकाशन.
12. बोरा, के. (2016). *कल्याणकारी योजनाएँ और भारतीय मतदाता का व्यवहार*. गुवाहाटी: असम सोशल रिसर्च कलेक्टिव.
13. मिश्रा, ए. (2020). *कर्नाटक की जाति-सत्ता संरचना: स्थानीय और राष्ट्रीय राजनीति का अंतर्संबंध*. बेंगलुरु: यूनिवर्सल एकेडमिक प्रेस.
14. मिश्रा, एस. (2022). *जाति और विकास का द्वैध विमर्श: नई राजनीतिक प्रवृत्तियाँ*. इलाहाबाद: भारतीय सामाजिक अध्ययन प्रतिष्ठान.
15. यादव, योगेन्द्र. (2019). *भारतीय लोकतंत्र में जाति का बदलता रूप*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
16. यादव, पी. (2022). *सोशल मीडिया और जाति: डिजिटल मंचों का नया राजनीतिक भूगोल*. भोपाल: समकालीन मीडिया अध्ययन केंद्र.
17. शर्मा, आर. (2018). *2014 के बाद का सामाजिक इंजीनियरिंग मॉडल: एक राजनीतिक विश्लेषण*. जयपुर: लोकचिंतन प्रकाशन.
18. शर्मा, टी. (2023). *डिजिटल राजनीति और पहचान का पुनर्निर्माण*. दिल्ली: सामाजिक शोध प्रकाशन.
19. शाह, जी. (2004). *दक्षिण भारत में जाति, आंदोलन और राजनीति*. चेन्नई: ओरिएंट लॉन्गमैन.
20. वर्मा, एन. (2019). *उत्तर भारत में गैर-प्रमुख जातियों की राजनीतिक भागीदारी*. अलीगढ़: सामाजिक संरचना अध्ययन समूह.
21. वर्मा, पी. (2021). *सामाजिक न्याय नीतियाँ और आधुनिक भारतीय राज्य*. नई दिल्ली: नीति विश्लेषण परिषद.